श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय(10.33)

भक्तों मे ज्यों गोपी श्रेष्ठ, मुनियों में ज्यों व्यास।
पुराणों में ज्यों भागवतम्, लीला में महारास।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्॥

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं(म्) भगवतो गोप्यः(श्), श्रुत्वा वाचः(स्) सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं(न्) तापं(न्), तदङ्गोपचिताशिषः ॥ 1॥

तदङ्गो+ पचिताशिषः

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- राजन् ! गोपियाँ भगवान की इस प्रकार प्रेम भरी सुमधुर वाणी सुन कर जो कुछ विरहजन्य ताप शेष था, उससे भी मुक्त गयीं और सौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्राण प्यारे के अङ्ग-सङ्ग से सफल मनोरथ हो गयीं ॥ 1 ॥

तत्रारभत गोविन्दो, रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः(फ्) प्रीतै- रन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ 2॥

स्त्री+ रत्नै+ रन्वितः(फ्), रन्योन् + याबद्ध+ बाहुभिः

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी और सेविका गोपियाँ एक-दूसरे की बाँह-में-बाँह डाले खड़ी थीं। उन स्त्रीरत्नों के साथ यमुनाजी के पुलिन पर भगवान ने अपनी रसमयी रास क्रीड़ा प्रारम्भ की ॥ 2 ॥

रासोत्सवः(स्) सम्प्रवृत्तो, गोपीमण्डलमण्डितः ।

योगेश्वरेण कृष्णेन, तासां(म्) मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।

प्रविष्टेन गृहीतानां(ङ्), कण्ठे स्वनिकटं(म्) स्त्रियः ॥ 3॥

द्वयोर् + द्वयोः

यं(म्) मन्येरन् नभस्तावद्- विमानशतसं(ङ्)कुलम् ।

दिवौकसां(म्) सदाराणा- मौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ 4॥

मौत्सुक्या+ पहृतात्+ मनाम्

सम्पूर्ण योगों के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये और उनके गले में अपना हाथ डाल दिया। इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, यही क्रम था। सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि हमारे प्यारे तो हमारे ही पास हैं। इस प्रकार सहस्र-सहस्र गोपियों से शोभायमान भगवान श्रीकृष्ण का दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ हुआ। उस समय आकाश में शत-शत विमानों की भीड़ लग गयी। सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ वहाँ आ पहुँचे। रासोत्सव के दर्शनकी लालसा से, उत्सु कता से उनका मन उनके वश में नहीं था ॥ 3-4 ॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्- निपेतुः(फ्) पुष्पवृष्टयः ।

जगुर्गन्धर्वपतयः(स्), सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ 5॥

जगुर्+ गन्धर्व+ पतयः(स्), सस्त्रीकास्+ तद्यशोऽ+ मलम्

स्वर्ग की दिव्य दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं। स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होने लगी। गन्धर्वगण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ भगवान के निर्मल यश का गान करने लगे ॥ 5 ॥

वलयानां(न्) नूपुराणां(ङ्), किं(ङ्)किणीनां(ञ्) च योषिताम् ।

सप्रियाणामभूच्छब्दस्- तुमुलो रासमण्डले ॥ 6॥

सप्रियाणा+ मभूच्+ छब्दस्

रास मण्डल में सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्याम सुन्दर के साथ नृत्य करने लगीं। उनकी कलाइयों के कंगन, पैरों के पायजेब और करधनी के छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे। असंख्य गोपियाँ थीं, इस लिये यह मधुर ध्वनि भी बड़े ही जोर की हो रही थी ॥ 6 ॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्- भगवान् देवकीसुतः ।

मध्ये मणीनां(म्) हैमानां(म्), महामरकतो यथा ॥ 7॥

महा+ मरकतो

यमुनाजी की रमणरेती पर व्रजसुन्दरियों के बीच में भगवान श्रीकृष्ण की बड़ी अनोखी शोभा हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो अगणित पीली-पीली दमकती हुई सुवर्ण-मणियों के बीच में ज्योतिर्मयी नील मणि चमक रही हो ॥ 7 ॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः(स्) सस्मितैर्भ्रूविलासैर्-
भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः(ख्) कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः(ख्) कबररशनाग्रन्थयः(ख्) कृष्णवध्वो,
गायन्त्यस्तं(न्) तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ 8॥

पादन्यासैर् + भुज+ विधुतिभिः(स्), सस्मितैर्+ भ्रूविलासैर्
भज्यन्+ मध्यैश्+ चलकुचपटैः(ख्), कुण्डलैर्+ गण्डलोलैः
स्विद्यन्+ मुख्यः(ख्), कबर+ रशना+ ग्रन्थयः(ख्), गायन्+ त्यस्तं(न्)

नृत्य के समय गोपियाँ तरह-तरह से ठुमक ठुमुक कर अपने पाँव कभी आगे बढ़ातीं और कभी पीछे हटा लेतीं। कभी गति के अनुसार धीरे-धीरे पाँव रखतीं, तो कभी बड़े वेग से; कभी चाक की तरह घूम जातीं, कभी अपने हाथ उठा-उठा कर भाव बतातीं, तो कभी विभिन्न प्रकार से उन्हें चमकातीं। कभी बड़े कलापूर्ण ढंग से मुसकरातीं, तो कभी भौंहें मटकातीं। नाचते-नाचते उनकी पतली कमर ऐसी लचक जाती थी, मानो टूट गयी हो। झुकने, बैठने, उठने और चलने की फुर्ती से उनके स्तन हिल रहे थे तथा वस्त्र उड़े जा रहे थे। कानों के कुण्डल हिल-हिल कर कपोलों पर आ जाते थे। नाचने के परिश्रम से उनके मुँह पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। केशों की चोटियाँ कुछ ढीली पड़ गयी थीं। नीवी की गाँठे खुली जा रही थीं। इस प्रकार नटवर नन्दलाल की परम प्रेय सी गोपियाँ उनके साथ गा-गा कर नाच रही थीं। परीक्षित्! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो बहुत-से श्रीकृष्ण तो साँवले साँवले मेघ मण्डल हैं और उनके बीच-बीच में चमकती हुई गोरी गोपियाँ बिजली है। उनकी शोभा असीम थी ॥ 8॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना, रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता, यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ 9॥

उच्चैर् + जगुर्नृत्य+ माना, कृष्णा+ भिमर्श+ मुदिता, यद्+ गीतेने+ दमावृतम्

गोपियों का जीवन भगवान की रति है, प्रेम है। वे श्रीकृष्ण से सटकर नाचते-नाचते ऊँचे स्वर से मधुर गान कर रही थीं। श्रीकृष्ण का संस्पर्श पा-पाकर और भी आनन्द मग्न हो रही थीं। उनके राग-रागिनियों से पूर्ण गान से यह सारा जगत् अब भी गूँज रहा है ॥ 9 ॥

काचित् समं(म्) मुकुन्देन, स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन, प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये, तस्यै मानं(ञ्) च ॥ 10॥

स्व+ रजाती+ रमिश्रिताः,ध्रुव+ मुन्निन्ये,

कोई गोपी भगवान के साथ उनके स्वर में स्वर मिलाकर गा रही थी। वह श्रीकृष्ण के स्वर की अपेक्षा और भी ऊँचे स्वर से राग अलापने लगी। उसके विलक्षण और उत्तम स्वर को सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न

हुए और वाह वाह करके उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी राग को एक दूसरी सखी ने ध्रुपद में गाया। उसका भी भगवान ने बहुत सम्मान किया ॥ 10 ॥

काचिद् रासपरिश्रान्ता, पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ।

जग्राह बाहुना स्कन्धं(म्), श्लथद्वलयमल्लिका ॥ 11॥

पार्श्वस्+ थस्य, श्लथद्+ वलय+ मल्लिका

एक गोपी नृत्य करते-करते थक गयी। उसकी कलाइयों से कंगन और चोटियों से बेला के फूल खिसक ने लगे। तब उसने अपने बगल में ही खड़े मुरली मनोहर श्याम सुन्दर के कंधे को अपनी बाह से कस कर पकड़ लिया ॥ 11 ॥

तत्रैकां(म्)सगतं(म्) बाहुं(ङ्), कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।

चन्दनालिप्तमाघ्राय, हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ 12॥

कृष्णस् + योत्पल+ सौरभम्, चन्दना+ लिप्त+ माघ्राय

भगवान श्रीकृष्ण ने अपना एक हाथ दूसरी गोपी के कंधे पर रख रखा था। वह स्वभाव से तो कमल के समान सुगन्ध से युक्त था ही, उस पर बड़ा सुगन्धित चन्दन का लेप भी था। उसकी सुगन्ध से वह गोपी पुलकित हो गयी, उसका रोम-रोम खिल उठा। उसने झटसे उसे चूम लिया ॥ 12 ॥

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्त- कुण्डलत्विषमण्डितम् ।

गण्डं(ङ्) गण्डे सन्दधत्या, अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ 13॥

कस्याश् + चिन्नाट्य+ विक्षिप्त, कुण्डलत्+ विषमण्डितम्, अदात्+ ताम्बू+ लचर्वितम्

एक गोपी नृत्य कर रही थी। नाचने के कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छटा से उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने अपने कपोलों को भगवान श्रीकृष्ण के कपोल से सटा दिया और भगवान ने उसके मुँह में अपना चबाया हुआ पान दे दिया ॥ 13 ॥

नृत्यन्ती गायती काचित्- कूजन्नूपुरमेखला ।

पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं(म्), श्रान्ताधात् स्तनयोः(श्) शिवम् ॥ 14॥

कूजन्+ नूपुर+ मेखला, पार्श्वस्+ थाच्युत+ हस्ताब्जं(म्)

कोई गोपी नूपुर और करधनी के घुँघरूओंको झनकारती हुई नाच और गा रही थी। वह जब बहुत थक गयी, तब उसने अपने बगल में ही खड़े श्याम सुन्दर के शीतल कर कमल को अपने दोनों स्तनों पर रख लिया ॥ 14 ॥

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं(ङ्) कान्तं(म्), श्रिय एकान्तवल्लभम् ।

गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां(ङ्), गायन्त्यस्तं(वँ) विजह्निरे ॥ 15॥

गृही+ तकण्ठ्यस्+ तद्+ दोर्भ्यां(ङ्)

परीक्षित्! गोपियों का सौभाग्य लक्ष्मी जी से भी बढ़कर है। लक्ष्मी जी के परम प्रियतम एकान्त वल्लभ भगवान श्रीकृष्ण को अपने परम प्रियतम के रूप में पाकर गोपियाँ गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं। भगवान श्रीकृष्ण ने उनके गलो को अपने भुजपाश में बांध रखा था, उस समय गोपियों की बड़ी अपूर्व शोभा थी ॥ 15 ॥

कर्णोत्पलालकविटं(ङ्)ककपोलघर्म-

वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।

गोप्यः(स्) समं(म्) भगवता ननृतुः(स्) स्वकेश-

स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ 16॥

कर्णोत् + पलाल+ कविटं(ङ्)+ ककपो+ लघर्म, वलयनू+ पुरघो+ षवाद्यैः,

स्रस्+ तस्रजो, भ्रमरगा+ यकरा+ सगोष्ठ्याम्

उनके कानों में कमल के कुण्डल शोभा यमान थे। घुँघराली अलके कपोलों पर लटक रही थीं। पसीने की बूँदें झलक ने से उनके मुख की छटा निराली ही हो गयी थी। वे रास मण्डल में भगवान श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही थीं। उनके कंगन और पायजेबों के बाजे बज रहे थे। और उनके ताल-सुर में अपना सुर मिलाकर गा रहे थे। और उनके जूड़ों तथा चोटियों में गुंथे हुए फूल गिरते जा रहे थे ॥ 16 ॥

एवं(म्) परिष्वङ्गकराभिमर्श-

स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्-

यथार्भकः(स्) स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ 17॥

परिष्वङ्+ गकराभिमर्श, स्निग्धे+ क्षणोद्+ दामविला+ सहासैः, स्वप्रतिबिम् + बविभ्रमः

परीक्षित् | जैसे नन्हा सा शिशु निर्विकार भावसे अपनी परछाई के साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदय से लगा लेते, कभी हाथ से उनका अङ्ग स्पर्श करते, कभी प्रेम भरी तिरछी चितवन से उनकी ओर देखते तो कभी लीला से उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियों के साथ क्रीडा की, विहार किया ॥ 17 ॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः(ख्),

केशान् दुकूलं(ङ्) कुचपट्टिकां(वँ) वा ।

नाञ्जः(फ्) प्रतिव्योढुमलं(वँ) व्रजस्त्रियो,

विस्रस्तमालाभरणाः(ख्) कुरूद्वह ॥ 18॥

तदङ्+ गसङ्ग+ प्रमुदा+ कुलेन्द्रियाः(ख्), विस्रस्+ तमाला+ भरणाः(ख्)

परीक्षित्! भगवान के अङ्ग का संस्पर्श प्राप्त करके गोपियों की इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्द से विह्वल हो गयीं। उनके केश बिखर गये। फूलों के हार टूट गये और गहने अस्त व्यस्त हो गये। वे अपने केश, वस्त्र और कंचुकी को भी पूर्णतया सँभाल ने में असमर्थ हो गयीं ॥ 18 ॥

कृष्णविक्रीडितं(वँ) वीक्ष्य, मुमुहुः(ख्) खेचरस्त्रियः ।

कामार्दिताः(श्) शशां(ङ्)कश्च, सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ 19॥

कृष्ण+ विक्रीडितं(वँ), खेचर+ स्त्रियः

भगवान श्रीकृष्ण की यह रास क्रीडा देख कर स्वर्ग की देवाङ्गनाएँ भी मिलन की कामना से मोहित हो गयीं और समस्त तारों तथा ग्रहों के साथ चन्द्रमा चकित, विस्मित हो गये ॥ 19 ॥

कृत्वा तावन्तमात्मानं(यँ), यावतीर्गोपयोषितः ।

रेमे स भगवां(म्)स्ताभि- रात्मारामोऽपि लीलया ॥ 20॥

तावन् + तमात् + मानं(यँ), यावतीर् + गोपयोषितः

परीक्षित्। यद्यपि भगवान आत्माराम हैं- उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी की भी आवश्यकता नहीं है- फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेल में उनके साथ इस प्रकार विहार किया ॥ 20 ॥

तासामतिविहारेण, श्रान्तानां(वँ) वदनानि सः ।

प्रामृजत् करुणः(फ्) प्रेम्णा, शन्तमेनाङ्गपाणिना ॥ 21॥

तासा+ मतिविहारेण, शन्तमेनाङ्+ गपाणिना

जब बहुत देर तक गान और नृत्य आदि विहार करने के कारण गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान श्रीकृष्ण ने बड़े प्रेम से स्वयं अपने सुखद कर कमलों के द्वारा उनके मुँह पौधे ॥ 21 ॥

गोप्यः(स्) स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-

गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।

मानं(न्) दधत्य ऋषभस्य जगुः(ख्) कृतानि

पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ 22॥

स्फुरत् + पुरट+ कुण्डल+ कुन्तलत्+ विड्, सुधितहा+ सनिरी+ क्षणेन, तत्कररुहस्+ पर्शप्रमोदाः

परीक्षित्। भगवान के कर कमल और नखस्पर्श से गोपियों को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने उन कपोलों के सौन्दर्य से, जिन पर सोने के कुण्डल झिल मिला रहे थे और घुँघराली अल के लटक रही थीं, तथा उस प्रेम भरी चितवन से, जो सुधा से भी मीठी मुसकान से उज्ज्वल हो रही थी, भगवान श्रीकृष्ण का सम्मान किया और प्रभु की परम पवित्र लीलाओंका गान करने लगीं ॥ 22 ॥

ताभिर्युतः(श्) श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-

घृष्टस्रजः(स्) स कुचकुं(ङ्)कुमरं(ञ्)जितायाः ।

गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः(श्),

श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ 23॥

श्रम+ मपो+ हितुमङ्+ गसङ्ग, गन्धर्वपा+ लिभिर+ नुद्रुत, गजी+ भिरिभरा+ डिव

इसके बाद जैसे थका हुआ गजराज किनारों को तोड़ता हुआ हथिनियों के साथ जल में घुसकर क्रीडा करता है, वैसे ही लोक और वेद की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले भगवान ने अपनी थकान दूर करने के लिये गोपियों के साथ जल क्रीडा करने के उद्देश्य से यमुना के जल में प्रवेश किया। उस समय भगवान की वनमाला गोपियों के अंग की रगड़ से कुछ कुचल-सी गयी थी और उनके वक्षःस्थल की केसर से वह रंग भी गयी थी। उसके चारों ओर गुनगुनाते हुए और उनके पीछे-पीछे इस प्रकार चल रहे थे, मानो गन्धर्वराज उनकी कीर्ति का गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हो ॥ 23 ॥

सोऽम्भस्यलं(यँ) युवतिभिः(फ्) परिषिच्यमानः(फ्),

प्रेम्णेक्षितः(फ्) प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।

वैमानिकैः(ख्) कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो,

रेमे स्वयं(म्) स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ 24॥

सोऽम्भस् + यलं(यँ), प्रहसती+ भिरितस्+ ततोऽङ्ग, कुसुमवर्+ षिभिरी+ ड्यमानो

परीक्षित् यमुनाजल में गोपियों ने प्रेमभरी चितवन से भगवान की और देख-देख कर तथा हँस-हँस कर उनपर इधर-उधर से जल की खूब बौछारें डाली जल उलीच उलीच कर उन्हें खूब - नहलाया। विमानों पर चढ़े हुए देवता पुष्पों की वर्षा करके हुए। उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार यमुना जल में स्वयं आत्मा राम भगवान श्रीकृष्ण ने गजराज के समान जल विहार किया ॥ 24 ॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-

प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।

चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो

यथा मदच्युद् द्विरदः(ख्) करेणुभिः ॥ 25॥

प्रसू+ नगन्धा+ निलजुष्ट+ दिक्तटे, भृङ्ग+ प्रमदा+ गणावृतो

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण वजयूवतियों और भौरों की भीड़ से घिरे हुए यमुना तट के उप वन में गये। वह बड़ा हो रमणीय था उसके चारों ओर जल और स्थल में बड़ी सुन्दर सुगन्ध वाले फूल खिले हुए थे। उनकी सुवास लेकर मन्द मन्द वायु चल रही थी। उसमें भगवान इस प्रकार विचरण करने लगे, जैसे मदमत्त गजराज हथिनियों के झुंडके साथ घूम रहा हो ॥ 25 ॥

एवं(म्) शशां(ङ्)कां(म्)शुविराजिता निशाः(स्),

स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।

सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः(स्),

सर्वाः(श्) शरॅत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ 26॥

शशां(ङ्)कां(म्)+ शुविराजिता, सत्यकामोऽ+ नुरता+बलागणः,

आत्मन् + यवरुद्ध+ सौरतः(स्),शरत् + काव्यकथा+ रसाश्रयाः

परीक्षित्! शरद्की वह रात्रि जिस के रूप में अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत हो गयी थीं, बहुत ही सुन्दर थी। चारों ओर चन्द्रमा की बड़ी सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी काव्यों में शरद् ऋतु की जिन रस सामग्रियों का वर्णन मिलता है, उन सभी से वह युक्त थी उसमें भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी गोपियों के साथ यमुना के पुलिन, यमुना जी और उनके उपवन में विहार किया। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान सत्य सङ्कल्प हैं। यह सब उनके चिन्मय सङ्कल्प की ही चिन्मयी लोला है और उन्होंने इस लीला में काम भाव को, उसकी चेष्टाओं को तथा उसकी क्रिया को सर्वथा अपने अधीन कर रखा था, उन्हें अपने-आप में कैद कर रखा था ॥ 26 ॥

राजोवाच

सं(म्)स्थापनाय धर्मस्यॅ, प्रशमायेतरॅस्य च ।

अवतीर्णो हि भगवा- नं(म्)शेन जगदीश्वरः ॥ 27॥

प्रशमा+ येतरस्य

राजा परीक्षित्ने पूछा-भगवन! भगवान श्रीकृष्ण सारे जगत् के एकमात्र स्वामी है। उन्होंने अपने अंश श्रीबलराम जी के सहित पूर्णरूप में अवतार ग्रहण किया था। उनके अवतार का उद्देश्य ही यह था कि धर्मकी स्थापना हो और अधर्म का नाश ॥ 27 ॥

स कथं(न्) धर्मसेतूनां(वँ्), वॅक्ता कर्ताभिरॅक्षिता ।

प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन्, परदाराभिमर्शनम् ॥ 28॥

परदारा+ भिमर्शनम्

ब्रह्मन् वे धर्ममर्यादा के बनाने वाले, उपदेश करने वाले और रक्षक थे। फिर उन्होंने स्वयं धर्मके विपरीत परस्त्रियों का स्पर्श कैसे किया ॥ 28 ॥

आप्तकामो यदुपतिः(ख्), कृतवान् वै जुगुॅप्सितम् ।

किमभिॅप्राय एतं(न्) नः(स्), सं(म्)शयं(ञ्) छिॅन्धि सुॅव्रत ॥ 29॥

जुगुप् + सितम्

मैं मानता हूँ कि भगवान श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तु की कामना नहीं थी, फिर भी उन्होंने किस अभिप्राय यह निन्दनीय कर्म किया ? परम ब्रह्मचारी मुनीश्वर! आप कृपा कर के मेरा यह सन्देह मिटाइये ॥ 29 ॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यॅतिक्रमो दृॅष्ट, ईश्वराणां(ञ्) च साहसम् ।

तेजीयसां(न्) न दोषाय, वह्नेः(स्) सर्वभुजो यथा ॥ 30॥

धर्म+ व्यति+ क्रमो

श्रीशुकदेव जी कहते हैं-सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर कभी-कभी धर्म का उल्लंघन और साहस का काम करते देखे जाते हैं। परंतु उन कामों से उन तेजस्वी पुरुषों को कोई दोष नहीं होता। देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थो के दोष से लिप्त नहीं होता ॥ 30 ॥

नैतत् समाचरेज्जातु, मनसापि ह्यनीश्वरः ।

विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्- यथा रुद्रोऽब्धिजं(वँ) विषम् ॥ 31॥

समाचरेज्+ जातु, विनश्यत्+ याचरन्

जिन लोगो में ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये, शरीर से करना तो दूर रहा। यदि मूर्खता वश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है। भगवान शङ्कर ने हलाहल विष पी लिया था, दूसरा कोई पिये तो वह जल कर भस्म हो जायगा ॥ 31 ॥

ईश्वराणां(वँ) वचः(स्) सत्यं(न्), तथैवाचरितं(ङ्) क्वचित् ।

तेषां(यँ) यत् स्ववचोयुक्तं(म्), बुद्धिमां(म्)स्तत् समाचरेत् ॥ 32॥

स्व+ वचोयुक्तं(म्)

इसलिये इस प्रकार के जो शङ्कर आदि ईश्वर है, अपने अधिकारके अनुसार उनके वचन को ही सत्य मानना और उसी के अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके आचरण का अनुकरण तो कहीं-कहीं ही किया जाता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष का चाहिये कि उनका आचरण उनके उपदेश के अनुकूल हो, उसको जीवन में उतारे ॥ 32 ॥

कुशलाचरितेनैषा- मिह स्वार्थो न विद्यते ।

विपर्ययेण वानर्थो, निरहं(ङ्)कारिणां(म्) प्रभो ॥ 33॥

कुशला+ चरिते+ नैषा

परीक्षित् ! वे सामर्थ्यवान् पुरुष अहङ्कार हीन होते है, शुभ कर्म करने में उनका कोई सांसारिक स्वार्थ नहीं होता और अशुभ कर्म करने में अनर्थ नहीं होता। वे स्वार्थ और अनर्थ से ऊपर उठे होते हैं ॥ 33 ॥

किमुताखिलसत्त्वानां(न्), तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ।

ईशितुश्चेशितव्यानां(ङ्), कुशलाकुशलान्वयः ॥ 34॥

किमुता+ खिल+ सत्त्वानां(न्), तिर्यङ्+ मर्त्यदिवौ+ कसाम्

ईशितुश् + चेशितव्यानां(ङ्), कुशला+ कुशलान्वयः

जब उन्हींके सम्बन्ध में ऐसी बात है तब जो पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त चराचर जीवों के एक मात्र प्रभु सर्वेश्वर भगवान हैं, उनके साथ मानवीय शुभ और अशुभ का सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है ॥ 34 ॥

यत्पादपं(ङ्)कजपरागनिषेवतृप्ता,

योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।

स्वैरं(ञ्) चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्-

तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः(ख्) कुत एव बन्धः ॥ 35॥

यत्पा+ दपं(ङ्)कजपरा+ गनिषे+ वतृप्ता,

योग+ प्रभाव+ विधुता+ खिलकर्मबन्धाः, तस्येच्+ छयाऽऽत्+ तवपुषः(ख्)

जिन के चरणकमलो के रजका सेवन करके भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ योग प्राप्त करके उसके प्रभाव से योगीजन अपने सारे कर्मबन्धन काट डालते हैं और विचारशील ज्ञानीजन जिनके तत्त्व का विचार करके तत्स्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्म- बन्धन से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं, वे ही भगवान् अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं. तब भला, उनमें कर्म बन्धन की कल्पना ही कैसे हो सकती है ॥ 35 ॥

गोपीनां(न्) तत्पतीनां(ञ्) च, सर्वेषामेव देहिनाम् ।

योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः(ख्), क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ 36॥

योऽन्तश् + चरति

गोपियों के, उनके पतियों के और सम्पूर्ण शरीरधारियों के अन्तःकरणों में जो आत्मा रूप से विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वही तो अपना दिव्य चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करके यह लीला कर रहे हैं ॥ 36 ॥

अनुग्रहाय भूतानां(म्), मानुषं(न्) देहमास्थितः ।

भजते तादृशीः(ख्) क्रीडा, याः(श्) श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ 37॥

देह+ मास्थितः

भगवान जीवोंपर कृपा करने के लिये ही अपने को मनुष्य रूप में प्रकट करते हैं और ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जाये ॥ 37 ॥

नासूयन् खलु कृष्णाय, मोहितास्तस्य मायया ।

मन्यमानाः(स्) स्वपार्श्वस्थान्, स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥ 38॥

स्वपार्श्व+ स्थान्

व्रजवासी गोपोने भगवान् श्रीकृष्ण में तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियों हमारे पास ही हैं ॥ 38 ॥

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते, वासुदेवानुमोदिताः ।

अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः(स्), स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥ 39॥

अनिच् + छन्त्यो

ब्रह्मा की रात्रि के बराबर वह रात्रि बीत गयी। ब्राह्म मुहूर्त आया। यद्यपि गोपियों की इच्छा अपने घर लौटने की नहीं थी, फिर भी भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञासे वे अपने-अपने घर चली गयीं। क्योंकि वे अपनी प्रत्येक चेष्टा से, प्रत्येक सङ्कल्प से केवल भगवान को ही प्रसन्न करना चाहती थीं ॥ 39 ॥

विक्रीडितं(वँ) व्रजवधूभिरिदं(ञ्) च विष्णोः(श्),

श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।

भक्तिं(म्) परां(म्) भगवति प्रतिलभ्य कामं(म्),

हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ 40॥

व्रजवधू+ भिरिदं(ञ्), श्रद्धान् + वितोऽ+ नुशृणुया+ दथ, हृद्रोगमाश्व+ पहिनोत् + यचिरेण

परीक्षित् ! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के इस चिन्मय रास-विलास का श्रद्धा के साथ बार बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में परा भक्ति की प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदय रोग- काम विकार से छुटकारा पा जाता है। उसका कामभाव सर्वदा के लिये नष्ट हो जाता है ॥ 40 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्(म्)यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं(न्) नाम त्रयस्त्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।